'पाली' : एक पुनर्पाठ

डॉ. विजी वी.

अतिथि प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय कोच्चिन-22

भीष्म साहनी आधुनिक हिन्दी कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। साहनी जी स्वयं को प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ते हैं। मार्क्सवादी लेखक होने के बावजूद वे कट्टर मार्क्सवाद के हिमायती नहीं हैं। इस दृष्टि से उन्हें किसी विचारधारा के घेरे में सीमित रखना नामुमकिन है। यही वजह है कि उनकी कहानियों का विषय व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। उनकी कहानियों का सरोकार अपने परिवेश से है, आम जनजीवन की विडम्बनापूर्ण स्थितियों से है। इस सन्दर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र का मत विशेष उल्लेखनीय है– ''भीष्म का कथा-संसार अधिक व्यापक है। उन्होंने अनेक वर्गों से, अनेक समस्याओं से, अनेक सन्दर्भों से जुड़े यथार्थ का चुनाव किया है। ...भीष्म जी की... बहुतेरी कहानियाँ हैं जो जीवन यथार्थ की विविध छवियों को चित्रित करती हैं और सहज-भाव से किसी मानवीय बिन्दु से जोड़कर उस यथार्थ को एक नयी अर्थमत्ता दे देती हैं।''[1] साहनी जी का कहानी-संग्रह 'पाली' इस दृष्टि से विचारणीय है। सन् 1989 में प्रकाशित 'पाली' में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। 'पाली' की प्रत्येक कहानी आजाद भारत की विसंगतियों से टकराती है और मानवीय सम्बन्धों की अहमियत के मायने

समझाती है। संग्रह की अधिकांश कहानियाँ विभाजन की विभीषिका को अभिव्यक्ति देती हैं। इसके साथ ही आतंकवाद की भीषण परिणतियों को, आजाद भारत के मौजूदा मूल्य-विघटन को व्यापक धरातल पर उजागर करती हैं।

'पाली' इस संग्रह की सबसे सशक्त और मार्मिक कहानी है। यह विभाजन की त्रासदी के शिकार अभागे बालक के आत्मसंघर्ष को शब्दबद्ध करती है। कहानी का मुख्य पात्र पाली अपने परिवेशगत दबाव से पहले हिन्दू से मुसलमान और बाद में मुसलमान से हिन्दू बन जाता है। पाली मनोहरलाल और कौशल्या का बेटा है। देश के बँटवारे के दौरान शरणार्थी बने मनोहरलाल सपरिवार अमृतसर की ओर रवाना हो जाता है। इसी बीच पाली उसके हाथ से छूटकर भीड़ में गुम हो जाता है। बर्तनफरोश शकूर अहमद पाली को अपने घर में ले आता है। शकूर और उसकी पत्नी जैनब इस्लाम धर्म के अनुरूप पाली की परवरिश करते हैं। इल्ताफ हुसैन बने पाली उनकी जिन्दगी की धुरी बन जाता है। पाँच साल बाद मनोहरलाल अपने बेटे की तलाश में अहमद के आँगन में पहुँचता है और इस शर्त पर बच्चे को अपने साथ ले जाता है कि हर साल ईद के मौके पर उसे जैनब और शकूर के पास भेजेगा। अपने घर में पहुँचने के बावजूद पाली मुस्लिम संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाता। हर रोज़ दोपहर के वक्त वह नमाज पढ़ता है और नाम पूछने पर कहता है ''इल्ताफ! इल्ताफ हुसैन वल्द शकूर अहमद।''[2] यह आदत उसकी जिन्दगी में उलझनें खड़ा कर देती है। एक ओर कट्टरपन्थी मौलवी और पंडित पाली को अपने-अपने धर्म के अनुरूप ढालने की कोशिश करते हैं तो दूसरी ओर जैनब और कौशल्या सरीखी माताएँ पाली को बेटे के रूप में स्वीकारती हैं। अर्थात् कहानी एक ओर धार्मिक उन्माद की आँधी में बुरी तरह पिसते निरीह बालक की मजबूरी को उजागर करती है तो दूसरी ओर धर्म और मजहब से परे मानवीय मूल्यों की जीत को दर्शाती है।

'झुटपुटा' सिख विरोधी दंगों पर आधारित कहानी है। शहर-भर में दंगे की अमानवीय वृत्तियों से उपजी दहशत फैल जाती है। लठैत सिख सरदार की दुकान में आग इसलिए नहीं लगाते कि वह मकान हिन्दू का है। इसी तरह वे ड्राइक्लीनर की दुकान में आग नहीं लगाते हैं। क्योंकि उसमें एक हिन्दू और एक सिख दोनों भाईवाल हैं। मोती नगर के ड्राईक्लीनर की दुकान सिख सरदार की है। लठैत जब इसे जलाने को उतारू हो जाते हैं तब किसी ने गोहर लगायी ''ओ कमबख्तों, दुकान सिख की है, पर उसमें कपड़े तो ज्यादा हिन्दुओं के ही हैं!''[3] इसी वजह से उसको भी छोड़ देता है।

साम्प्रदायिक दंगों से वास्तव में मानव-मानव के बीच नफरत की आग फैल जाती है और वह संवेदनहीन और प्रतिक्रियाहीन बन जाता है। कहानी का प्रोफेसर कन्हैयालाल दंगों की दुविधापूर्ण स्थितियों का गवाह है। फिर भी वह अपनी प्रतिक्रिया खुलकर प्रकट करने में असमर्थ निकलता है। इसलिए आत्मप्रताड़ना की भावना उनके

दिल को कचोटती है। फिर भी वह स्वयं को दिलासा देते हुए सोचता है ''इन बातों को देखकर कम-से-कम मेरी आँखों में पानी तो भी भर आया था! मेरी हिस तो नहीं मर गई है। और लोग तो मुँह बाये देखते रह गये थे, हँसी-ठट्ठा कर रहे थे।''[4]

कहानी के माध्यम से साहनी जी ने साम्प्रदायिक दंगों की असलियत को जीवन्त अभिव्यक्ति देने के साथ ही अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए ऐसे दंगों को भड़काने वाले छद्म व्यक्तित्वों का पर्दाफाश भी किया है। साहनी जी ने प्रो. कन्हैयालाल के माध्यम से अपने विचारों को यों व्यक्त किया है– ''...यह कोई दंगा तो न हुआ। दंगे में तो लोग दुश्मन को पहचानते हैं, एक-दूसरे को ललकारते हैं, एक-दूसरे का पीछा करते हैं। पर यहाँ तो सड़क खाली थी और दुकान को जो चाहे तोड़ जाये, जो चाहे जला जाये। दंगे ऐसे तो नहीं होते। लुटेरों में एक भी चेहरा पहचान नहीं था, एक भी आदमी अपने मुहल्ले का नहीं था।''[5] स्पष्ट है कि साहनी जी देश की उन्नति के लिए बाधक मानव-विरोधी ताकतों के प्रति सतर्क रहने का आह्वान करते हैं।

साहनी जी ने 'झुटपुटा' में दंगों की अमानवीयता के ऊपर इन्सानियत की जीत को रेखांकित करने की सार्थक पहल की है। दंगों के कारण मुहल्ले के दूध-बैंक भी बन्द हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि दूध के ट्रक के सभी ड्राइवर सरदार हैं। मुहल्ले में नफरत की आग धधक रही है। लेकिन दूध के इन्तजार में खड़े प्राय: सभी लोग अपने पड़ोसी सिख-परिवारों को मदद पहुँचाने के उद्देश्य से उनके बर्तन भी साथ ले आते हैं। आखिर मुहल्ले के खतरे से पूर्णत: वाकिफ होने के बावजूद एक सरदार अपनी जान दाव पर रखकर ट्रक में दूध ले आता है। यह दृश्य देखकर सभी लोग अचम्भे में पड़ जाते हैं। लेकिन सरदार अपने पक्ष का समर्थन करते हुए कहता है– ''बाबा, बच्चों ने दूध तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मन : देखा जाएगा जो होगा। दूध तो पहुँचा आये।''[6]

'नौसिखुआ' आतंकवाद के विकराल स्वरूप को उजागर करती है। 'नौसिखुआ' का अमरजीत आत्मबलिदान की भावना से प्रेरित होकर आतंकवादियों के दल में शामिल होता है। अमरजीत को चौक बाजार के दुकानदार हरबंशलाल को मौत के घाट उतारने का हुक्म मिलता है। हरबंशलाल की हत्या की योजना बनाकर अमरजीत और उसके साथी दुकान के पास पहुँचते हैं। जब अमरजीत दुकानदार को मारने के लिए आमादा है, तब उसकी नजर दुकानदार की कलाई पर अटक जाती है, जिन पर उसके जैसा ही गुरु का कड़ा चमचमा रहा था। सहसा अमरजीत के मन में आत्मीयता की भावना जाग उठती है और वह असमंजस में पड़ जाता है। लेकिन अमरजीत का साथी उसको जान से मारकर भाग जाता है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से साहनी जी यह जताना चाहते हैं कि आतंकवादियों के लिए धर्म मानव-मानव के बीच दरारें पैदा करने और अपनी मुकाम को साकार बनाने का साधन मात्र है। हमारी युवा पीढ़ी आतंकवादियों के इशारे पर चलने वाले मोहरे बनकर अपनी जिन्दगी गँवा

देती है। ऐसे आतंकवादी मानवता के सामने प्रश्न चिह्न खड़ा कर देते हैं और हमारे देश के लिए खतरा साबित होते हैं।

'आवाजें' ऐसे बदनसीब इन्सानों का ब्यौरा प्रस्तुत करती है जो अपने अतीत और वर्तमान में विस्थापन की समस्या से जूझने के लिए अभिशप्त हैं। अतीत में वे अपनी जन्मभूमि पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत में आकर बसते हैं और वर्तमान दौर में वे अपनी ही नयी पीढ़ी द्वारा उपेक्षित हैं। कहानी का मुख्य पात्र मक्खनलाल उर्फ 'डब्बू' पाकिस्तान से दिल्ली में आकर बसता है और कड़ी मेहनत करके अपने बच्चों को इज्जतदार जिन्दगी दिलाता है। लेकिन बुढ़ापे में मक्खनलाल और उनकी पत्नी बेटों के लिए फालतू साबित होते हैं। कहानी के प्राय: सभी पात्र विस्थापन की कसक को अपने दिल में दबाकर जीते हैं। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से साहनी जी ने विस्थापितों के जीवन-यथार्थ को उकेरने के साथ ही नयी और पुरानी पीढ़ी की आपसी टकराहट को दर्ज करने का सार्थक प्रयास भी किया है।

'झूमर' आजाद भारत के स्वाधीनता सेनानियों की दुविधापूर्ण जिन्दगी की दास्तान है। कहानी का मुख्य पात्र अर्जुनदास स्वाधीनता सेनानी है। स्वाधीनता के जुनून में वे अपने पारिवारिक दायित्वों के प्रति भी मुँह मोड़ लेते हैं। आजादी के बाद भी वे न्यायसंगत समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करता है। लेकिन आजाद भारत के मूल्य विघटन से बुरी तरह आहत अर्जुनदास के मन में अपराध-बोध पनपते हैं और वे मानसिक तनाव में डूबे रहते हैं।

कहानी में साहनी जी ने स्वाधीनता सेनानियों के प्रति आजाद भारत की राजनीतिक व्यवस्था के नकारात्मक रुख को दर्ज किया है। आजादी की वर्षगाँठ पर अर्जुनदास को सरकार की ओर से आमन्त्रण-पत्र मिलता है। पत्र के साथ एक फार्म भी था, जिनमें आजादी की लड़ाई में स्वाधीनता सेनानियों के योगदान के बारे में पूछा गया था। फार्म को भरकर सम्मेलन के कार्यालय को भेजना था। पत्र को देखकर अर्जुनदास को खुशी हुई। उसने सोचा कि स्वाधीनता सेनानियों की निष्ठा और कुर्बानियों को स्वीकृति मिली। लेकिन राजधानी पहुँचते ही उन्हें भास होने लगा कि सरकार प्रत्येक स्वतन्त्रता सेनानी का मासिक भत्ता बाँधने जा रही है। तो अर्जुनदास कार्यालय में अपने फार्म दिये बिना घर लौट आते हैं और अपनी प्रतिक्रिया यों जाहिर करते हैं– ''मैंने भत्ते के लिए दर्ख्वास्त नहीं दी। यह मेरी देशसेवा का अपमान नहीं है क्या? क्या मैं जेल इसलिए गया था कि एक दिन मैं उसके लिए भत्ता मागूँगा।''[7]

स्वाधीनता सेनानियों के प्रति देश की युवा पीढ़ी का दृष्टिकोण भी इससे अलग नहीं है। कहानी में रेलगाड़ी में देशभक्ति से ओतप्रोत गीत गाते वयोवृद्ध देशभक्तों के मखौले उड़ाते मनचलों का जिक्र साहनी जी ने किया है। अर्जुनदास भी इस घेरे से मुक्त नहीं है। वह अपने ही घर में उपेक्षित जिन्दगी बिताने के लिए विवश है। अर्जुनदास की बेटी उनकी मान्यताओं और आदर्शों का मजाक उड़ाती है। आर्थिक

पराधीनता की वजह से अर्जुनदास के प्रति बेटे का नजरिया भी दूसरा नहीं है। आखिरकार अर्जुनदास अपनी बेकार जिन्दगी की सच्चाई से वाकिफ हो जाते हैं। उनके मन में सवाल उठते हैं– ''उसका आदर्शवाद जो रोशनी की लौ की तरह उसका पथ-प्रदर्शन करता रहा था, कुछ-कुछ मन्द पड़ने लगा है ... क्यों मैंने अपनी जिन्दगी नासमझी में व्यतीत की है? यदि मैं फिर से जन्म लेकर आऊँ तो क्या फिर से ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहूँगा?''[8]

'चोरी' महानगरीय जिन्दगी की अन्दरूनी परतों को उद्घाटित करती है। लेखक के मुताबिक ''हर शहर की ऊपरी परत भले कितनी ही सुन्दर और सुहावनी क्यों न हो, उसके नीचे की परतों में दर्द लहरें लेता है। दर्द और बेचैनी, आपा-धापी और छीना-झपटी, भूख, बेराजगारी। लोग जीवन को दाँतों से पकड़े जूझ रहे होते हैं। पर अगर लोग जवानी की कसम तक नहीं खाते तो इसलिए कि जवानी को ये निचली परतें नजर ही नहीं आतीं। जवानी दुनिया-भर के गुनाह माफ कर देती है। वह जीने में इतनी मस्त होती है कि रास्ते में आने वाले रोड़े-पत्थर उसे नजर नहीं आते। वह उन पर से जैसे कूदकर निकल जाती है।''[9]

'पाली' की 'प्रादुर्भाव', 'मरने से पहले', 'सेमिनार', 'खुशबू' सरीखी कहानियाँ दरअसल आधुनिक मनुष्य की यन्त्रवत् ज़िन्दगी और मुनाफाखोरी मनोवृत्ति पर तीखा प्रहार हैं तो 'देवेन' मानवीय सम्बन्धों की गरमाहट को लिपिबद्ध करती है।

निष्कर्षत : भीष्म साहनी जी ने 'पाली' में आजाद भारत में मौजूद अन्तर्विरोधों को उकेरकर सामाजिक विघटन के मूल सबबों की खोज की है। इसके साथ ही उन्होंने मिटते मानवीय मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठा के लिए सार्थक पहल की है। इस दृष्टि से देखें तो 'पाली' भीष्म साहनी जी के रचनात्मक दायित्व का ज्वलन्त मिसाल है। आजाद भारत की गतिविधियों का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत कर साहनी जी पाठकों के सामने अनेक ज्वलन्त सवाल उपस्थित करते हैं और भारतीय परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए विघटनकारी शक्तियों को निष्क्रिय बनाने की दरकार पर जोर देते हैं।

सन्दर्भ

1. रामदरश मिश्र–हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान, पृ. 154/157
2. भीष्म साहनी, 'पाली', पाली, पृ. 33
3. भीष्म साहनी, 'पाली', झुटपुटा, पृ. 49
4. वही
5. भीष्म साहनी, 'पाली', झुटपुटा, पृ. 50
6. भीष्म साहनी, 'पाली', झुटपुटा, पृ. 56
7. भीष्म साहनी, 'पाली', झूमर, पृ. 164
8. भीष्म साहनी, 'पाली', झूमर, पृ. 170
9. भीष्म साहनी, 'पाली', चोरी, पृ. 175